• श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः •

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्

भागवत-पत्रिका

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बंधनकर ॥

वर्ष ९ | गौराब्द ४७७, मास—नारायण १६, वार—कारणोदशायी
बृहस्पतिवार, ३० माघ, सम्वत २०२०, १३ फरवरी १९६४ | संख्या ९

श्रीश्रीगौराङ्ग-स्मरणमङ्गल-स्तोत्रम्

[श्रीश्रील ठाकुर भक्तिविनोद-कृत]

प्रभु कः को जीवः कथमिदमचिद्विश्वमिति वा विचार्यैतानर्थान् हरिभजनकृच्छास्त्रचतुरः ।
अभेदाशां धर्मान् सकलमपराधं परिहरन् हरेर्नामानन्दं पिबतिहरिदासो हरिजनैः ॥८६॥

संसेव्य दशमूलं वै हित्वाऽविद्यामयं जनः । भावपुष्टिं तथा तुष्टिं लभते साधुसङ्गतः ॥८७॥

इतिप्रायां शिक्षां चरणमवुपेभ्यः परिदिशन् गलन्नेत्राम्भोभिः स्नपितनिजदीर्घोज्ज्वलवपुः ।
परानन्दाकारो जगदतुलबन्धुर्यतिवरः शचीसूनुः शश्वत् स्मरणपदवीं गच्छतु स मे ॥८८॥

गतिर्गौड़ीयानामपिसकलवर्णाश्रमजुषां तथा चौड्रीयानामतिसरलदैन्याश्रितहृदाम् ।
पुनः पाश्चात्यानां सदयमनसां तत्त्वसुधियां शचीसूनुः शश्वत् स्मरणपदवीं गच्छतु स मे ॥८९॥

अहोमिश्रागारे स्वपतिविरहात्कण्ठहृदयः श्लथात् सन्वेदैर्ध्यंदधदतिविशालं करपदोः ।
क्षितौ धृत्वा देहं विकलितमतिर्गद्गदवचः शचीसूनुः साक्षात् स्मरणपदवीं गच्छतु स मे ॥९०॥

गतोबद्धद्वारादुपलगृहमध्याद्बहिरहो गवां कालिङ्गानामपिसमतिगच्छन् वृतिगणम् ।
प्रकोष्ठे सङ्कोचादत निपतितः कच्छप इव शचीसूनुः साक्षात् स्मरणपदवीं गच्छतु स मे ॥९१॥
व्रजारण्यं स्मृत्वा विरहविकलान्तर्विलपितो मुहुः संघृष्यायं रुधिरमधिकं तद्वदहो ।
क्व मे कान्तः कृष्णो वदवदवदेति प्रलपितः शचीसूनुः साक्षात् स्मरणपदवीं गच्छतु स मे ॥९२॥
पयोराशेस्तीरे चटकगिरिराजे सिकतिले व्रजन गोष्ठे गोवर्द्धनगिरिपतिं लोकितुमहो ।
गणैः सार्द्धं गौरोद्भुतविशिष्टः प्रमुदितः शचीसूनुः साक्षात् स्मरणपदवीं गच्छतु स मे ॥९३॥

पद्यानुवाद—

को प्रभु ? को मैं जीव हूँ ? क्यों यह जड़ संसार ?
चतुर बूझ 'यह' हरि भजन कर, वेदान्त विचार ॥
'अहं ब्रह्म'-मत छोड़ कें, परिहर सब अपराध ।
हरिनामामृत पान 'हरि'-दासन के सङ्ग साध ॥८६॥
सेवन कर 'दसमूल' यह, ताप अविद्या नास ।
लहत साधु सङ्ग भावकी, पुष्टि, तुष्टि, परकास ॥८७॥
दासन यह शिक्षा दई प्रभु कृष्णचैतन्य ।
वेद तत्त्व उपदेश 'कलि-जीव' किये सब धन्य ॥
दीर्घ बाहु सुवरन वरन परत नयन जल धार ।
यति वर जगबन्धु अतुल परानन्द आकार ॥८८॥
वर्णाश्रम सेवी 'सकल'-गौड़ जनन के प्राण ।
दीन सरल उत्कलन के केवल प्रभु गति ज्ञान ॥
पश्चिम वासी आर्यजन परमाश्रय गौराङ्ग ।
प्रभुपद सेवत प्रीत जुत जे जन साङ्गोपाङ्ग ॥८९॥
काशीमिश्र आगारमें निवसत गोराराय ।
राधा विरहिणि भावतें रमण विरह अकुलाय ॥
अति दीरघ कर पाद भये अंग संधिके भेद ।
लुटत धरणि गद्गद् वचन व्रणन भये तन खेद ॥९०॥
बद्ध द्वार पाषाणमय गृहते बाहर होय ।
चले गये कैसे प्रभु लख न सकौ गति कोय ॥
कालिङ्गन की गौणके गोष्ठ रहे प्रभु जाय ।
आङ्गनके संकोच बस कच्छप सदृस लखाय ॥९१॥
विरह विकल विलपत सुमर व्रज वृन्दावन धाम ।
संघर्षण तै कियौ मुख वाहित रुधिर निकाम ॥
'कहाँ कृष्ण मम कान्त है, कहौ-कहौ सखि ! हाय' ।
शची तनय या विध जगत दीयौ प्रेम दिखाय ॥९२॥
सिन्धु तीर सिकता त्वरित चटक गिरीको जात ।
व्रजमें गिरिवर लखनके भ्रम गण सह अकुलात ॥९३॥

—परलोकगत पण्डित मधुसूदनदास गोस्वामीकृत

श्रीमध्वमुनि चरित

[लगभग तीस पैंतीस वर्ष पूर्व श्रील-प्रभुपाद द्वारा लिखित लेखका अनुवाद]

(जन्म-देश-काल)

उत्तरमें हिमालय तथा अन्यान्य तीन दिशाओं में समुद्र द्वारा घिरा हुआ भूखण्ड भारतवर्ष के नाम से प्रसिद्ध है। भारतके बीचो-बीचमें विन्ध्याचल पर्वत अवस्थित है। विन्ध्याचलका उत्तरी भाग आर्यावर्त्त और दक्षिणी भाग दक्षिणात्यके नामसे प्रसिद्ध है।

दक्षिणात्यमें पूर्वीघाट और पश्चिमीघाट नामक दो पर्वत श्रेणियाँ हैं। इनमेंसे पश्चिमी घाटी पर्वत-श्रेणीका संस्कृत ऐतिह्यमें 'सह्य पर्वत' के नामसे उल्लेख पाया जाता है। इस सह्य पर्वत-श्रेणीके पश्चिममें तीन प्रदेश हैं। इनमेंसे बम्बईसे दक्षिणमें स्थित पहला प्रदेश कोनकन कहलाता है, उससे दक्षिणमें दूसरा प्रदेश कैनरा और उसके दक्षिण वाला प्रदेश केरल प्रदेश कहलाता है। कोनकन, कैनरा और केरल-इन तीनों प्रदेशोंकी पश्चिमी सीमा पश्चिम सागर या अरब सागर है। कोनकन प्रदेश की भाषा महाराष्ट्री भाषाकी तरह ही है। आधुनिक मालाबार जिला तथा कोचीन और त्रिवांकुर राज्य-ये सब केरल प्रदेशके अन्तर्गत हैं।

आजकल कैनरा-प्रदेश दो भागोंमें विभक्त हो गया है। उत्तर कैनरा जिला बम्बई-प्रदेशके अन्तर्भुक्त है। दक्षिण कैनरा जिला मद्रासके अन्तर्गत है। उत्तर कैनरामें केवल कैनरिज (कैनड़ी) भाषा ही बोली जाती है, परन्तु दक्षिण कैनरामें कैनड़ी, तेलगु और मलयालम-ये तीनों भाषाएँ प्रचलित हैं। उत्तर कैनरा जिलेमें आठ तहसीलें (उपविभाग) एवं दक्षिण कैनरामें पाँच तहसीलें हैं।

उडुपीकी स्थिति

दक्षिण कैनराका उत्तरी भाग खोशालपुर या कुण्डापुर तहसील कहलाता है। उससे दक्षिणमें उडूपी तालुक (तहसील) है तथा उससे दक्षिणमें मंगलोर तालुक है। मंगलोरसे पूर्व पुत्तुर या उप्पिनन् गडि तालुक है। तथा दक्षिणमें काषाड़गढ़ तालुक है। दक्षिण कैनरा १४ अंश ३१ कला उत्तर अक्षांस से लेकर १५।३१ उत्तर अक्षांस तक फैला है। वह कलकत्तासे ५६ मिनट पश्चिममें है अर्थात् जब कलकत्तामें बारह बजता है, तब कैनरामें ११ बजकर ४ मिनट बजता है।

दक्षिण कैनरा जिलेका प्रधान नगर मंगलोर है। मङ्गलोर मङ्गलोर-तालुकमें नेत्रवती नदीके किनारे एक सुन्दर नगर है। काषाड़गढ़ चंद्रगिरि या पयस्विनी नदीके किनारे है। उडूपी तालुकका प्रधान नगर उडूपी है। उडूपी तालुकके उत्तरी भागमें कुण्डापुर, पूर्वी भागमें मैसूर राज्य तथा दक्षिणमें मंगलोर तालूक और पश्चिममें अरब सागर है।

उडूपी और तीर्थपञ्चक

वर्तमान उडूपी नगरके पश्चिम-दक्षिण कोनेमें

प्राचीन कालमें पाजकाक्षेत्र नामक एक जनपद था। पाजकाक्षेत्र उडूपीसे समुद्रके किनारे लगभग दो मील पड़ता है। आजकल यह खंडहरोंसे परिपूर्ण बिलकुल उजड़ा हुआ निर्जन स्थान है। यहाँ दण्डतीर्थ नामक एक सरोवर तथा विमानगिरि नामक पर्वतके ऊपर दुर्गाजी का मन्दिर है। विमानगिरीकी तलहटीमें पाजकाक्षेत्र है। पौराणिकों के अनुसार त्रेतायुगमें परशुरामजी सह्याद्रिमें ही निवास करते थे। उडूपी और उसके निकटवर्ती पाजकाक्षेत्रके दो मीलके घेरे में ही परशुतीर्थ धनुतीर्थ गदातीर्थ, और बाणतीर्थ विराजमान हैं। ये तीर्थसमूह तीर्थ यात्रियोंके लिये बड़े ही शान्तिके केन्द्र हैं।

उडूपी या रजतपीठपुर

उडूपी नगरमें चन्द्रमौलेश्वर शिवमूर्त्ति अति प्राचीन कालसे विराजमान हैं। चन्द्रमौलेश्वर शिवसे ही उस ग्रामका नाम उडूपी हुआ है। 'उडूप'-शब्द से 'चन्द्रमा' का तथा 'उडूपी'-शब्दसे चन्द्रमौलेश्वर को ही साधारण रूपमें लक्ष्य किया जाता है। यह उडूपी नगर ही रजतपीठपुर कहलाता है। यहाँ अनन्तेश्वरका भी प्राचीन मन्दिर है। अनन्तेश्वर और चन्द्रमौलेश्वर—दोनों ही मन्दिर पूर्वमुखी हैं तथा एक दूसरेके पीछे हैं।

अनन्तेश्वर-मूर्त्तिका वैशिष्ट्य

सह्याद्रिके पश्चिममें समुद्र तट पर निवास करने वाले ब्राह्मणगण तीन श्रेणियोंमें विभक्त हैं—कोनकन, सारस्वत और शिवाल्ली। कोनकन और सारस्वत—इन दोनों प्रदेशोंमें रहनेवाले ब्राह्मणगण क्रमशः कोनकन और सारस्वत ब्राह्मण कहलाये। परन्तु शिवाल्ली ब्राह्मणोंके नामका सम्बन्ध स्थानसे न होकर शिवसे है। कैनड़ी भाषामें "शिवाली" या 'शिव-वेल्ली' शब्दसे 'शिवके रजत या चाँदी' का बोध होता है। ये लोग रजतपीठपुर स्थित अनन्तेश्वरके रजत या चाँदीके सिंहासनसे अपना सम्बन्ध बतलाते हैं। अनन्तेश्वरकी मूर्ति लिंगमूर्त्ति हैं; परन्तु बहुतोंका कहना है, यहाँ पर स्वयं परशुरामजी रजत-सिंहासन के ऊपर विराजमान हैं। कुछ लोग अनन्तेश्वर-मूर्त्ति को विष्णु-मूर्त्ति भी मानते हैं। इस मूर्त्तिको शैव-लोग शिव मान कर शिव-सहस्र नामका पाठ आदिसे एवं वैष्णवगण विष्णु मानकर विष्णु-सहस्रनाम पाठ आदिसे आराधना करते हैं। परन्तु विष्णु विग्रहोंकी जिस प्रकार पांचरात्रिक विधियोंसे पूजा होती है, अनन्तेश्वर मूर्त्तिकी पूजा वैसी नहीं होती, बल्कि तंत्र मतसे होती है। दक्षिण कैनराके इन गाँवोंमें आजकल भी भूत-प्रेतोंकी उपासना प्रचलित है। इस प्रदेशमें विष्णु मन्दिरों या विष्णु-विग्रहोंकी संख्या अत्यन्त अल्प है।

तुलुव राज्य और कुमल्वा नगरी

काषाड़गढ़ और वेकलके बीच चन्द्रगिरि या पयस्विनी नदी प्राचीन तुलुव राज्यकी दक्षिणी सीमा रेखाका निर्देश करती थी। तुलुव राज्यके अधिवासियोंकी भाषा 'टूलु' है। शिवाली ब्राह्मणोंकी बोल-चालकी भाषा टूलु ही है।

काषाड़गढ़ जनपदके चार कोस उत्तरमें समुद्रके किनारे कुमल्वा नामक नगर है। यहाँ रेलवे स्टेशन भी है। प्राचीन कालमें यह एक अत्यन्त समृद्ध नगर था। यहाँ एक सामन्त राजाकी राजधानी थी। ऐसा

अनुमान किया जाता है कि यहींके राजाओंके अधीन मङ्गलोर और उडूपीके तालूक थे। आज भी कुमलया का सामन्त राजवंश अँग्रेज सरकारसे वृत्ति पाता है तथा वह राजाके रूपमें अपना परिचय देता है।

श्रीमन्मध्वाचार्यका जन्म-स्थान

रजतपीठपुर अथवा शिवाल्ली या उडूपी ग्रामके निकटवर्ती पाजकाक्षेत्रमें ही श्रीमन्मध्वाचार्यका आविर्भाव हुआ। पाजकाक्षेत्रमें आज भी उनका जन्म स्थान सुरक्षित है। आजकल वहाँ किसी धनी व्यक्तिने पत्थरोंका सुन्दर भवन निर्माण करा दिया है। परन्तु वह स्थान जनशून्य निर्जन है। केवल स्मृति चिह्न ही वर्तमान है।

माता-पिता

उडूपीमें एक निष्ठासम्पन्न ब्राह्मण रहते थे। वे बड़े ही निर्धन थे। वे अपनी पतिव्रता पत्नीके साथ कठिन परिश्रम करके जीविका निर्वाह करते थे। उनको कोई पुत्र न होनेके कारण अपने घरके निकट अनन्तेश्वरके निकट उन्होंने देवताके समान एक पुत्रके लिये प्रार्थना की। उन्हें क्रमशः दो पुत्र पैदा हुए, परन्तु बचपनमें ही परलोकको प्राप्त गये। ऐसा देख कर उनके माता-पिता दुःखित होकर उडुपीको छोड़ कर पाजकाक्षेत्रमें चले आये। इन्हें एकमात्र कन्या थी। इसलिए वे प्रतिदिन उडुपीमें अनन्तेश्वरके समीप उपस्थित होकर पुत्र प्राप्तिके लिए प्रार्थना करते। फलस्वरूप विषुवत संक्रान्तिके दिन, जब कि अनन्तेश्वर मन्दिरमें किसी पर्वके उपलक्षमें मेला लगा हुआ था, एक साधु मन्दिरके सामने ध्वज-स्तंभके ऊपर चढ़ कर जोर-जोरसे चिल्लाने लगा कि कुछ ही दिनोंमें वायुका अवतार होने वाला है। यह यह सुनकर मध्यगेह (मध्वाचार्यके पिता) ने ऐसा अनुमान किया कि मेरी प्रार्थना सिद्ध हो गयी। अब मुझे देवताके समान पुत्र अवश्य ही पैदा होगा। साधुकी यह वाणी मेरे ही सम्बन्धमें है।

'मध्यगेह' नामका उद्देश्य

पाजकाक्षेत्रमें और भी कुछ समजातीय ब्राह्मणोंका निवास था। एक वंशके कुछ लोग एक ग्राममें वास करने पर उन्हें पूरबका घर, पश्चिमका घर, उत्तरका घर तथा दक्षिण और बीचका घर कहा जाता है। प्राचीन कालमें भी ऐसी ही व्यवस्था थी। श्रीमध्वाचार्यके पिता नगरके मध्य भागमें रहनेके कारण 'मध्यगेह' कहलाते थे। श्रीमध्वाचार्यके पूर्वज पवित्र और शास्त्रपारदर्शी ब्राह्मण थे। पाजकाक्षेत्रमें भट्टपल्लीके अन्तर्गत मध्यगेह भट्ट परम सदाचारी और आनुष्ठानिक विप्रके रूपमें प्रसिद्ध थे। कोई-कोई मध्यगेह भट्टका नाम मधेजी भट्ट भी कहते हैं। तुलु भाषामें नड्डुमनतिल्लय अर्थात् 'बीचका घर' कहा जाता है।

श्रीमध्वका पूर्वनाम वासुदेव और माता वेदविद्या

तात्कालीन तुलुव प्रदेशमें बहुत कम ही विष्णु-मूर्तियाँ थीं। विशेषतः शिवाल्ली ब्राह्मण तो शैव-धर्मावलम्बीके रूपमें ही प्रसिद्ध है। इसी कुलमें हमारे वैष्णवाचार्य पैदा हुए। पिता मध्यगेह और माता वेदविद्याने अनन्तेश्वरकी कृपासे देवतुल्य पुत्र-रत्नको पाकर उसका नाम वासुदेव रखा। किसी-किसीके मतसे वासुदेवकी माता वेदविद्याका नाम

'वेदवती' था। पुत्र पैदा होते ही पूरब गेह (घर) ने मध्यगेहके घर सद्यजात पुत्रके लिये एक दुग्धवती गाय दिया था। मध्यगेह भट्ट शिवाल्ली ब्राह्मण होने पर भी भगवान विष्णुमें उनकी प्रचुर निष्ठा थी। पुत्रका नामकरण 'वासुदेव' किया—इसीसे ही उनकी विष्णुनिष्ठाका परिचय मिलता है। इस कुलमें कुछ समय पूर्वसे ही विष्णुकी ही पारतम्य और सर्व-श्रेष्ठ माना जाने लगा था—इसका भी आभास पाया जाता है।

पाजकाक्षेत्रमें श्रीरामानुजके प्रभाव का अभाव

यद्यपि श्रीरामानुजने श्रीमध्वके आविर्भावसे २०० वर्ष पूर्व ही अवैष्णव मतोंका खण्डन कर जन-समाजमें श्रीनारायणकी सर्वश्रेष्ठता स्थापित कर दिया था, तथापि सह्याद्रिके पश्चिममें उनका तनिक भी प्रचार न था। सह्याद्रिके पूरबमें कर्नाटक और चोल प्रदेशोंमें श्रीरामानुजाचार्यके विशिष्टाद्वैत मतका कुछ-कुछ प्रचार था। जिससे शङ्कराचार्यका अद्वैतवाद रूप अन्धकार दूर होता जा रहा था। अच्युतप्रेक्ष अपने गुरुसे अहं ब्रह्मोपासनाके कुफलकी बात सुन चुके थे। अतएव मध्वके आविर्भावसे पूर्व ही तुलुव प्रदेशमें भी भागवत-सम्प्रदायका कथंचित् अस्तित्व लक्षित होता है।

सह्याद्रिके पश्चिममें पञ्चरात्रकी अपेक्षा भागवतकी प्रधानता

श्रीमध्वाचार्यके आविर्भावके पहलेसे ही हम पांचरात्रिक और भागवत—इन दो सम्प्रदायोंके सम्बन्धमें सुन पाते हैं। पांचरात्रिकोंमें शंख-चक्र आदि मुद्रा-धारणकी विधि थी। परन्तु भागवतोंमें गोपीचन्दन या गोपी मृत्तिका धारणकी विधि प्रचलित थी। आज भी तुलुव प्रदेशमें माध्व-वैष्णवोंमें पांचरात्रिक-विधिके अनुसार मुद्रा धारणकी व्यवस्था तो दृष्टिगोचर होती है; परन्तु वहाँके भागवत सम्प्रदायमें माध्वोंकी भाँति मुद्रा-धारणकी व्यवस्था नहीं है। मध्वाचार्यके आविर्भावसे पूर्व रामानुजीय पांचरात्रिक मत सह्याद्रिके पश्चिममें प्रबल नहीं होने पर भी वहाँ भागवत-सम्प्रदाय विद्यमान था; इसमें कोई मतभेद नहीं है। शङ्कर-मतका प्रभाव कम करनेमें श्रीरामानुज-सम्प्रदाय और भागवत-सम्प्रदाय दोनोंका प्रचुर हाथ है।

वैष्णवोंका जन्म—कर्मफलके अधीन नहीं होता

जिस प्रकार अवैष्णव जीवगण कर्मफलके अनुसार नाना प्रकारके शरीरोंको धारण करके अपने-अपने कर्मफलका भोग करते हैं तथा भोग करनेके पश्चात् वासनानुसार पुनः कर्मयोग्य शरीर प्राप्त होते हैं, विष्णुदास वैष्णवगण उस प्रकार कर्मफलका भोग करनेके लिए अवश होकर जन्म नहीं ग्रहण करते। जीवके सौभाग्यसे कभी-कभी श्रीमन्नारायण स्वयं अवतरित होकर उनका कल्याण करते हैं और कभी-कभी वैकुण्ठ स्थित अपने पार्षदोंको पृथ्वी पर अवतीर्ण कराकर जीवोंका कल्याण कराते हैं। जिस समय धर्मकी ग्लानि उपस्थित होती है तथा अधर्म-की प्रबलता होती है, उसी समय भगवान मृत्युलोकमें शुभागमनपूर्वक धर्मकी स्थापना करते हैं। जिस प्रकार श्रीरामानुजीय पूर्वज सिद्धसूरियोंने (अलवर-गण) समय-समय पर वैकुण्ठसे जगतमें अवतीर्ण होकर भगवद्भक्तिका प्रचार कर मायामोहित जीवों-का कल्याण किया है, उसी प्रकार अन्यान्य वैष्णवोंके

सम्बन्धमें भी समझना चाहिए। सभी वैष्णवोंका नित्य स्वरूप है। वैकुण्ठस्थ नित्य-स्वरूप सिद्धिके समय अपने-आप परिस्फुट हो पड़ता है। वैष्णवगण नित्य पार्षदतनुके अवतार हैं।

निर्विशेषवादी कर्मफलके अधीन होते हैं

निर्विशेषवादी वैकुण्ठका अस्तित्व उपलब्ध नहीं कर पाते। इसलिए वे सिद्धिकी अवस्थामें 'सोहं' भावकी कल्पना करते हैं। उनके विचारसे भगवान या भक्तोंका नित्य स्वनाम, स्वरूप, स्वगुण, स्वक्रिया आदि कुछ भी नहीं है। केवल माया या कुंठा द्वारा मायिक रूप, मायिक नाम, मायिक गुण, मायिक क्रिया आदि ग्रहण कर वे कर्मफल भोग करते हैं।

आचार्य मध्वमुनिका शरीर नित्य है; परन्तु शङ्कराचार्यका शरीर अनित्य और मिथ्या है

हमारे आचार्य श्रीमध्वमुनि मनु और जैमिनीकी भाँति कर्मफलसे बँधे हुए नहीं थे। वे तो वैकुण्ठसे अवतीर्ण हुए हैं। वैकुण्ठमें उनका नित्य विग्रह है। निर्विशेषवादियोंके मतानुसार चिन्मय-विग्रह या परिचय आदि विशेषसमूह कुण्ठा (माया) वृत्तिकी क्रिया है। स्वर्ग और नरक आदिमें देवतासे लेकर कीट आदि तनके सभी देह नश्वर और मायाजात मिथ्या हैं। इसलिये उनके मतसे शङ्कराचार्य शङ्करके अवतार होने पर भी रुद्र महोदयका अनित्य शरीर मिथ्या ही सिद्ध होता है। वैष्णवोंका श्रीअङ्ग वैसा नहीं होता। (क्रमशः)

—जगद्गुरु श्रीलप्रभुपाद

हरि, तेरौ भजन कियौ न जाइ।
कहा करौं, तेरी प्रबल माया देति मन भरमाइ ॥
जबै आवैं साधु-संगति, कछुक मन ठहराइ।
ज्यौं गयंद अन्हाइ सरिता, बहुरि वहै सुभाइ ॥
बेष धरि-धरि हर्‌यौ पर-धन, साधु-साधु कहाइ।
जैसैं नटवा लोभ कारन करत स्वाँग बनाइ ॥
करौं जतन, न भजौं तुमकौं, कछुक मन उपजाइ।
सूर प्रभु की सबल माया, देति मोहि भुलाइ ॥

—सूरदास

प्रश्नोत्तर

गौड़ीय पूर्वाचार्योंका वैशिष्ट्य

प्र० ४७—श्रीगौड़ीय-सम्प्रदायके तत्त्वाचार्य कौन हैं ?

'श्रीजीव गोस्वामी ही हमारे तत्त्वाचार्य हैं; अतएव वे श्रीरूप सनातनके शासनगर्भमें सदा-सर्वदा वर्त्तमान हैं।'

प्र० ४८—श्रीश्रीजीव गोस्वामीका वैशिष्ट्य क्या है ?

श्रीश्रीजीव गोस्वामीका नाम सुनते ही वैष्णवों का हृदय आनन्दसे नृत्य कर उठता है।* * * * श्रीजीव गोस्वामीने श्रीरूप गोस्वामीके निकट समस्त भक्ति-शास्त्रका अध्ययन किया था। कुछ ही दिनोंमें तत्त्व-शास्त्रमें श्रीगौड़ीय-सम्प्रदायमें श्रीजीवगोस्वामी सर्वश्रेष्ठ आचार्य माने जाने लगे। उस समयसे श्रीजीव गोस्वामीने श्रीवृन्दावन धामका कभी भी परित्याग नहीं किया। वृन्दावनमें रह कर ही उन्होंने २५ ग्रन्थ लिखे।**** वेदान्त-दर्शन-विद्यामें उस समय श्रीजीव गोस्वामी अद्वितीय धुरन्धर विद्वान थे। कहा जाता है कि श्रीविष्णु सम्प्रदायके आचार्य श्रीवल्लभने स्व-रचित तत्त्वदीप ग्रन्थको श्रीजीव गोस्वामीको दिखलाया था। श्रीजीव गोस्वामीने उसे देख कर बहुतसे वैदान्तिक विचारोंको उठाकर उनके मतकी त्रुटियाँ दिखलायी थीं। (वल्लभाचार्यने श्रीजीव गोस्वामीके परामर्शसे उस ग्रन्थमें अनेक स्थलोंमें संशोधन किया था।**** श्रीजीव गोस्वामीका षट् सन्दर्भ ग्रन्थ जगतमें एक अमूल्य रत्न है। षट् सन्दर्भको भलीभाँति समझ लेने पर वेदान्तका कोई भी विचार जानना बाकी नहीं रह जाता।'

—श्रीजीव गोस्वामी प्रभु; स. तो. २।१२

प्र० ४९—श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी प्रभुके चरित्र का वैशिष्ट्य क्या है ?

श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी बचपनसे ही वैष्णव-धर्मानुरागी थे। उन्होंने अपने पितृव्य परिव्राजकाचार्य श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीके निकट विधिपूर्वक वेद-वेदान्तादि शास्त्रोंका अध्ययन किया था। जिस समय श्रीचैतन्य महाप्रभुजी दाक्षिणात्य-वासियोंके ऊपर कृपा करनेके लिये विचरण करते हुए श्रीरंगम में पहुँचे, तो वहाँ उनकी भेंट गोपाल भट्टसे हुई थी। श्रीगोपाल भट्टने श्रीमन्महाप्रभुको दर्शन करके उनके चरणोंमें आत्मसमर्पण कर दिया। कृपा करुणा-वरुणालय श्रीमन्महाप्रभुजीने गोपाल भट्टके ऊपर विशेष कृपा पूर्वक उनके अन्दर शक्ति संचार किया। इस शक्ति संचारके प्रभावसे गोपाल भट्ट घर-बार और माता-पिता आदि सब कुछ छोड़ कर वृन्दावन में उपस्थित हुए तथा वहाँ श्रीरूप गोस्वामी आदिके साथ मिल कर श्रीवृन्दावनके लुप्त तीर्थोंका उद्धार करनेके पवित्र कार्यमें जुट पड़े। साथ ही उन्होंने भक्ति स्मृति आदि अनेकानेक ग्रन्थोंकी रचना की है।

उन्होंने श्रीमद्रूप गोस्वामी प्रभुकी आज्ञासे श्रीवृन्दावनमें श्रीराधारमणकी सेवा भी प्रकाशित की है।

—श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी प्रभु, स. तो. २।७

प्र० ५०—श्रीजाह्नवा देवी कौन तत्त्व हैं? उन्होंने वैष्णव जगतका कौनसा कार्य किया है?

'श्रीश्रीमती जाह्नवा देवीका जन्मोत्सव। आज श्रीश्रीचैतन्यचरण महाभागवतोंके परम आनन्दका दिन है। आनुमानित १४०६-१० शकाब्दमें जाह्नवा देवी अम्बिका कालनामें श्रीमहाप्रभुके प्रियपात्र श्रीसूर्यदास पण्डितकी परम सौभाग्यशालिनी भद्रावती नामक पत्नीके गर्भसे आविर्भूत हुई। उपयुक्त समय पर श्रीनित्यानन्द प्रभुने सर्वगुण सम्पन्न जाह्नवीदेवी और उनकी जेठी बहन श्रीमती वसुधादेवीका शास्त्र विधिके अनुसार पाणि-ग्रहण किया। * * * जाह्नवी देवीने लगभग १४६५ शकाब्दमें श्रीवंशीवदनानन्दके पुत्र श्रीचैतन्यके पुत्र रामचन्द्रको पोष्यपुत्रके रूपमें ग्रहणकर उसे दीक्षा प्रदान किया। ये नित्यानन्द-प्रभुकी शक्ति हैं तथा श्रीकृष्णलीलाकी साक्षात् अनङ्ग मंजरी सखी हैं। इन श्रीमती जाह्नवादेवीने जो सब अत्यन्त अद्भुत कार्य किया है, वह वैष्णव-मण्डलीमें अविदित नहीं है।'

—श्रीजाह्नवा देवी, स. तो. २।४

प्र० ५१—शुद्धभक्ति साहित्य-साम्राज्यके आदि-कवि-सम्राट कौन हैं?

'ठाकुर वृन्दावनदास केवल वैष्णव-जगतके ही रत्न नहीं हैं, अधिकन्तु वे बंगीय साहित्य-समाजके भी अलंकार स्वरूप हैं। अंग्रेजी-साहित्य में जिस प्रकार 'चसार' (Chaucer) नामक कविका सम्मान है, बंगीय-साहित्यमें ठाकुर वृन्दावनदासका भी सम्मान होना उचित है। वास्तवमें ठाकुर वृन्दावनसे पहले किसीने भी बंग-भाषामें शुद्धभक्ति का पद्य-ग्रन्थ नहीं लिखा है। * * * वृन्दावनदास ठाकुर श्रीव्यासदेवके अवतार हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। उनकी परमसाध्वी माता समस्त वैष्णवोंकी पूज्यनीया हैं।'

—श्रीवृन्दावनदास ठाकुर, स. तो. २।२

५२—श्रीश्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी प्रभुने जगत कल्याण के लिये क्या किया है?

कविराज गोस्वामी सर्वशास्त्रज्ञ थे। उनके द्वारा रचित "श्रीचैतन्य-चरितामृत", 'श्रीगोविन्दलीलामृत', 'श्रीकृष्णकर्णामृतकी सारंग-रंगदा' टीका आदि ग्रन्थ वैष्णवजगतके अमूल्य रत्न हैं। * * श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी प्रभु श्रीचैतन्य सम्प्रदाय में एक प्रधान पण्डित एवं परम भक्त थे। इस बातको प्रमाणित करनेके लिये हमें चेष्टा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं दीख पड़ती है। कविराज गोस्वामीके ग्रन्थ ही इसका सुन्दर प्रमाण है। अपार-महिम कविराज गोस्वामीकी दया पर विचार करनेसे विमोहित होना पड़ता है। उन्होंने संस्कृत ज्ञानसे रहित जन-समाजके प्रति करुणा प्रकाश कर क्या ही सुन्दर श्रीचैतन्यचरितामृत-ग्रन्थकी रचना की है। मेरे विचारसे, यदि कविराज-प्रभु कृपा कर इस ग्रन्थ को प्रकाशित न करते तो दर्शनादि-शास्त्र ज्ञानसे रहित मनुष्य श्रीचैतन्य महाप्रभुके द्वारा प्रकटित सनातन वैष्णवमतको जान नहीं पाते तथा उनकी क्या गति होती, उसे कहा नहीं जा सकता है। धन्य कविराज!

आपने वैष्णव सम्प्रदायभुक्त पण्डित और मूर्ख दोनोंको ही ऋणी बना रखा है। हम मुखसे आपका कितना गुणगान कर सकते हैं ? आपने श्रीचैतन्य-चरितामृतमें लिखा है–"यदि वा ना जाने केह, शुनिते शुनिते सेह" इत्यादि आपकी सिद्ध वाणीके प्रभाव-से ही वैष्णव-सम्प्रदायभुक्त (तथाकथित) अनेक मूर्ख लोगोंका भी श्रीचरितामृतमें उत्तम अधिकार देखा जाता है। आपके चरणकमलोंमें अगणित-प्रणाम है।"

–श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी, स. तो. २।१०-११

प्र० ५३—श्रीश्रीनिवासार्य प्रभुने गौड़ीय वैष्णव जगतका क्या उपकार किया है ?

"श्रीनिवास बाल्यकालमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणाश्रित अपने पिताके मुखसे श्रीचैतन्य महाप्रभुके अतिमर्त्य गुणावलीका श्रवण करके उनके शरणागत हुए और युवास्थामें अपने माता-पिताका आदेश लेकर वैराग्याश्रममें प्रविष्ट हो गये। इसके पश्चात् वे सबसे पहले श्रीनवद्वीप धाममें महाप्रभुकी शक्ति श्रीमती विष्णु प्रिया ठाकुरानीजी, उनके रक्षक महाप्रभु के अन्तरङ्ग श्रीबंशीवदनानन्द प्रभु एवं महाप्रभुकी लीला-स्थलियोंका दर्शन करने के लिये श्रीधाम नवद्वीप पहुँचे। वहाँ श्रीविष्णुप्रिया देवीके मन्दिरमें कुछ दिन रहकर उन्होंने बंशीवदनानन्दप्रभुके निकट महाप्रभुकी लीला-कथाओंका श्रवण किया एवं उनकी लीला-स्थलियोंका दर्शन किया। तत्पश्चात् विष्णु प्रियाजी और बंशीवदनानन्दसे विदा लेकर द्वादश पाटों तथा श्रीचैतन्यमहाप्रभुके भक्तोंके स्थानोंका दर्शन किया। इस प्रकार कुछ दिन भक्तमण्डलीके साथ भेंटकर वे श्रीपुरुषोत्तम धाममें उपस्थित हुए। * * * श्रीनिवास पुरुषोत्तम (पुरीधाम) से गौड़ मण्डल लौटकर वहाँ कुछ दिन ठहरे। तदनन्तर श्रीवृन्दावन पहुँचे। वहाँ वे गोस्वामी प्रभुगणके साथ व्रजमण्डलका दर्शन और नित्य-नवीन भावोंका आस्वादन करने लगे। इसी प्रकार व्रजमें अनेक दिन वासकर पुनः चिन्तामणि-भूमि गौड़-मण्डलमें लौट कर असंख्य मायामोहित जीवोंका उद्धार किया।"

—श्रीनिवासाचार्य प्रभु, स. तो. २।१०-११

प्र० ५४—श्रीश्यामानन्द प्रभुने वैष्णव जगतका क्या उपकार किया है ?

* * * "श्यामानन्द प्रभु उत्कल प्रदेशके दण्डकेश्वर नामक गाँवमें करण वंशमें चैत्र-पूर्णिमाके दिन आविर्भूत हुए थे। बाल्य, पौगण्ड और किशोरा-वस्था तक घर पर ही रह कर उन्होंने यौवनावस्थाके प्रारम्भमें ही घर बार छोड़कर वैराग्य आश्रम ग्रहण किया था। उनका कठोर वैराग्य देखकर श्रीचैतन्य महाप्रभुके भक्तगण उनको दुःखी कृष्णदासके नामसे पुकारते थे। बिना दीक्षा ग्रहण किये भजन निष्फल होता है—ऐसा जानकर उन्होंने महाप्रभुके पार्षद श्रीगौरीदास पण्डितके प्रिय शिष्य श्रीहृदय चैतन्यके निकट दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेनेके पश्चात् वे सबसे पहले गुरु सेवाको अपना प्रधान कर्त्तव्य जानकर कुछ दिनों तक गुरुदेवके निकट रहकर सेवा करनेके पश्चात् गुरुकी आज्ञा लेकर श्रीवृन्दावन दर्शनके लिये चल पड़े। वृन्दावनमें उपस्थित होकर श्रीरघुनाथदास गोस्वामी आदि गुरुजनोंके कृपा-पात्र बने। श्यामा-नन्दकी वैराग्य-चेष्टा बड़ी ही आश्चर्यजनक थी। इनका कठोर वैराग्यको देखकर सभी विस्मित हो पड़ते थे। आचार्य श्रीनिवास और ठाकुर नरोत्तम आदिके

साथ मिलकर बंगालमें बहुत दिनों तक निवास कर श्रीकृष्ण भक्तिके प्रचार द्वारा उन्होंने अगणित माया-बद्ध पाषण्ड जीवोंका उद्धार किया है। वैष्णव-ग्रन्थावलीमें इन सब विषयोंका बड़ा ही सरस और साङ्गोपाङ्ग वर्णन लिखा गया है। हमारी यह बड़ी अभिलाषा है कि इन महापुरुषोंकी महिमा-कथाको विस्तार पूर्वक प्रकाश करूँ।"

—श्रीश्यामानन्द गोस्वामी स० तो० २।३

प्र० ५५—श्रीनिवासाचार्य, श्रीनरोत्तम और श्रीश्यामानन्द-प्रभुको 'गीताचार्य' क्यों कहा जाता है?

"श्रीनिवासाचार्य, श्रीनरोत्तमदास और श्रीश्यामानन्द-इन तीनों महात्माओंने वृन्दावनमें श्रीजीव-गोस्वामीके निकट शिक्षा-शिष्यके रूपमें वास किया। श्रीजीव गोस्वामीके अनुमोदनसे इन्होंने कीर्त्तन पद्धतिकी व्यवस्था की थी। तीनों ही संगीत शास्त्रमें महामहोपाध्याय थे। विभिन्न प्रकारकी पुरानी एवं नवीन राग-रागिनियोंके पारदर्शी थे। तीनों ही परस्पर एकप्राण, अभिन्न हृदय और हृदय-बन्धु थे। श्रीजीव गोस्वामीके अनुमोदनसे उत्साहित होकर ये तीनों ही संगीताचार्य अपने-अपने प्रदेशमें लौट आये। ये तीनों महात्मा गौड़ भूमिके अलंकार हैं। ऐसा जान पड़ता है कि वे गोस्वामियोंकी भाँति संस्कृत विद्यामें अधिक पण्डित न थे, क्योंकि उनके द्वारा रचित कोई संस्कृत ग्रन्थ नहीं देखा जाता है। वे व्रज-रसके परम रसिक भक्त, वैष्णव-सिद्धान्तमें पारंगत और संगीत विद्यामें विशारद थे। श्रीचैतन्य महाप्रभुके अप्रकट होनेके पश्चात् वैष्णव जगत्में कुछ-कुछ उपद्रव हुआ था। प्रभु-वंशमें उपयुक्त पात्र न रहनेके कारण और नाना मतवादोंके प्रवेश होनेके कारण गौड़भूमि आचार्य-शासनसे रहित हो पड़ी थी। प्रभु वीरचन्द्र स्वतंत्र-स्वभावयुक्त होनेके कारण वे समस्त गौड़ भूमिको शासनाधीन न कर सके। श्री अद्वैत-सन्तानमें भी उस समय भीषण गड़बड़ी मची हुई थी। श्रीमन्महाप्रभुके पार्षद-महान्तगण धीरे-धीरे अप्रकट हो रहे थे। इन परिस्थितियोंका सुयोग लेकर बाउल, सहजिया, दरवेश और सांई आदि कुपन्थियोंके प्रचारकगण अपनी-अपनी कुप्रथाओंका जगह-जगह प्रचार करने लगे। श्रीचैतन्य और नित्यानन्दके नामके प्रति साधारणतः सभी लोगोंका विश्वास है। अतः वे कुपन्थी प्रचारकगण उनके नामकी आड़में—उनकी दुहाई देकर दुर्भागे जीवोंको कुपथमें आकर्षण करने लगे। इस समय श्रीजीव गोस्वामी ही एकमात्र वैष्णवाचार्य थे। वे व्रजमण्डलमें रहनेके कारण गौड़ मण्डलकी शोचनीय अवस्था सुनकर बड़े दुःखित हुए और श्रीनिवासाचार्य प्रभु, श्रीनरोत्तमदास ठाकुर महाशय और श्रीश्यामानन्द प्रभुको गौड़ भूमिके धर्म-संस्थापक आचार्यके रूपमें प्रतिष्ठित करके उन्हें महाप्रभुके परिकरों द्वारा प्रकाशित सिद्धान्त-ग्रन्थोंको देकर गौड़ भूमिमें प्रचार करनेके लिये भेजा। महाप्रभुकी इच्छासे रास्तेमें सारे ग्रन्थ चुरा लिये गये। प्रेरित प्रचारकगण ग्रन्थोंके चोरी चले जाने पर बिना ग्रन्थोंके ही अपने-अपने भजनके बलसे अपनी गीत-पद्धतिका अवलम्बन कर शुद्ध वैष्णवधर्मका प्रचार करने लगे।"

—'सिद्धान्त विरुद्ध और रसाभास' स० तो० ६।२

प्र० ५६—श्रील बलदेव विद्याभूषण कौन हैं? श्रील जीव गोस्वामी और श्रीबलदेव विद्याभूषणमें क्या वैशिष्ट्य है?

"विद्याभूषण महोदय गौड़ीय सम्प्रदायके एक उज्ज्वल नक्षत्र हैं। इन्होंने इस सम्प्रदायका जितना उपकार किया है, उतना उपकार श्रीपाद गोस्वामियों के बाद और किसीने भी नहीं किया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि ये श्रीमहाप्रभुके नित्य-पार्षदोंमें से एक हैं। किसी वैष्णव ग्रन्थमें ऐसा इङ्गित है कि श्रीचैतन्य-पार्षद-श्रीगोपीनाथ मिश्र, जिन्होंने सार्वभौमके साथ श्रीमन्महाप्रभुके मुख-निःसृत वेदान्त सूत्रका भाष्य श्रवण किया था, वे ही ब्रह्मा हैं। अतएव ब्रह्म सम्प्रदायके भाष्यकर्त्ताके रूपमें पीछेसे विद्या भूषणके रूपमें प्रादुर्भूत हुए थे। वैष्णव-वाणी सत्य ही होती है। विद्याभूषणके सम्बन्धमें भी यह बात सत्य ही लगती है।

किसी-किसी अर्वाचीनका कहना है कि बलदेव विद्याभूषणका मत गोस्वामियोंके मतसे कुछ न्यून कोटिका है। हमने विशेष रूपसे विचार कर देखा है कि श्रीबलदेव और श्रीजीव गोस्वामीका एक ही मत है—उनमें तनिक भी भेद नहीं। हाँ, थोड़ा सा यह भेद तो अवश्य है कि बलदेवने भाष्यकारके गांभीर्य की रक्षा करने जाकर वैदान्तिक प्रणाली एवं वैदान्तिक शब्दोंका अधिक व्यवहार किया है। परन्तु इससे उन दोनोंके मतमें कोई अन्तर नहीं पड़ने पाया है। क्या तत्त्वके विषयमें, क्या उपासनाके विषय में—दोनों महात्माओंने एक ही प्रकारका सिद्धान्त किया है।"

—"सिद्धान्तरत्न या वेदान्त पीठक" स० तो० ६।१०

प्र० ५७—श्रील जगन्नाथदास गोस्वामी प्रभुके सम्बन्धमें श्रीभक्तिविनोद ने क्या कहा है ?

हे जगन्नाथदास आदि आधुनिक गौराङ्ग-प्रिय भक्तजन ! आप लोगोंके चरणोंमें हम दण्डवत पतित होकर हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहे हैं कि आपलोग श्रीसनातन गोस्वामीके स्थलाभिषिक्त होकर श्रीमायापुरका स्थान निर्दिष्ट कर दें। अब आप लोग ही हमारे गुरु हैं, और किसके चरणोंमें प्रार्थना करूँ ?"

प्र० ५८—युग-युगमें नये-नये जो आचार्यवृन्द आविर्भूत होते हैं, क्या वे पूर्वाचार्योंका उद्देश्य सफल करते हैं ?

"The great reformers will always assert that they have come out not to destroy the old law, but to fulfil it. Valmiki, Vyas****and Chaitanya Mahaprabhu assert the fact either expressly or by their conduct."

—The Bhagabat : Its Philosophy, its Ethics & Its Theology.

—जगद्गुरु श्रील भक्ति विनोद ठाकुर

———

नित्य-धर्म

[श्रीभागवत-पत्रिकाके सम्पादकके इन्द्रप्रस्थ गौड़ीय मठ; दिल्लीके प्रथम वार्षिकोत्सवके उपलक्षमें आयोजित धर्म सभामें "नित्यधर्म क्या है ?" के सम्बन्धमें दिये गये भाषणसे संग्रहीत]

नित्यधर्म कहनेसे उसके आनुसंगिक एवं अपरिहार्य रूपमें उस वस्तुका भी बोध होता है, जिसका वह नित्य धर्म है। क्योंकि धर्म एवं धर्मी, दोनोंका अविच्छेद्य सम्बन्ध है। उदाहरणके लिए जलसे तरलताका तथा आगसे उसकी उष्णताका अभिन्न सम्बन्ध है। इसलिये किसी भी वस्तुके धर्मका विचार करनेके पहले उस वस्तुके तत्त्वका विचार कर लेना अत्यन्त आवश्यक होता है। अतएव सर्वप्रथम हमें विचार करना है कि वास्तवमें 'मैं' क्या तत्त्व हूँ। इस आत्म-तत्त्वको छान्दोग्योपनिषदोक्त इन्द्र और विरोचनके उपख्यानसे सहज ही समझा जा सकता है।

बात सत्ययुगके प्रारम्भ की है। समग्र जगत् देवता और दानव दो शिविरोंमें बटा हुआ था। दानवोंके कर्णधार दानवराज विरोचन थे, तो देवताओंके अग्रणी-देवराज इन्द्र थे। दोनोंमें प्रतिद्वन्द्विता चल रही थी—असमोर्द्ध भोग एवं सुखकी प्राप्तिके लिए। दोनों परस्पर ईर्ष्या करते हुए प्रजापतिके पास गये और उसे प्राप्त करनेका उपाय पूछा। प्रजापतिने कहा—जो आत्मा पापशून्य, जरा-रहित, मृत्युहीन, विशोक, क्षुधारहित, पिपासारहित, सत्यकाम और सत्य-संकल्प है, उसे जान लेने पर सम्पूर्ण लोकोंके भोगों और समस्त कामनाओंकी प्राप्ति अनायास ही हो सकती है। ऐसा जानकर दोनोंने बत्तीस वर्षतक आत्म ज्ञानकी प्राप्तिके लिये वहीं पर ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास करनेके पश्चात् प्रजापतिसे आत्माको बतलाने के लिये प्रार्थना की। इस पर प्रजापतिने कहा कि जो पुरुष नेत्रोंमें दिखायी पड़ता है, यही आत्मा है, यही अमृत एवं अभय है।' उन्होंने पुनः पूछा कि जल या दर्पणमें जो दिखायी पड़ता है उनमेंसे आत्मा कौन सा है ?' इस पर प्रजापतिने उनको पृथक-पृथक जल पूर्ण शकोरेमें देखनेके लिये कहा और पूछा कि इसमें क्या देखते हो ? उन्होंने कहा—भगवन् ! हम समस्त आत्माको लोम और नख पर्यन्त ज्योंका-त्यों देखते हैं। तब प्रजापतिने उन्हें नख और केश कटवाकर तथा साफ-सुथरा व अलंकृत होकर शकोरेमें पुनः देखने के लिये कहा और पूछा—'क्या देखते हो ? उन्होंने कहा—जिस प्रकार हम दोनों उत्तम प्रकारसे अलंकृत सुन्दर-सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित और परिष्कृत हैं, ठीक उसी प्रकार ये दोनों भी दीख पड़ते हैं।' तब प्रजापतिने कहा—यही आत्मा है। यही अमृत और अभय है। वह सुनकर दोनों शान्तिचित्तसे चले गये।

विरोचन असुरोंके पास पहुँचकर इस स्थूल शरीर को ही आत्मा बतला कर उसे ही सेवनीय और पूजनीय बतलाते हुए कहा—'असुरों ! इस शरीर रूप आत्मा की पूजा और सेवा करनेवाला पुरुष इहलोक

और परलोक दोनों लोकोंको प्राप्त कर लेता है; उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण होती जाती हैं, और वह सम्पूर्ण भोगोंको प्राप्त कर लेता है।

परन्तु इन्द्रने मार्गमें ही विचार किया कि यह शरीर तो जन्मता है, मरता है, परिवर्तित होता है तथा नाना प्रकारके रोगों आदिके वशीभूत रहता है, अतएव यह जन्म-मरण-शोक-भयरहित अमर आत्मा कैसे हो सकता है? इसलिये वे रास्तेसे ही प्रजापतिके निकट लौटकर आत्माके सम्बन्धमें अपना संदेह व्यक्त किया। प्रजापतिने इन्द्रको पुनः बत्तीस वर्षों तक ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास कराकर कहा—'यह जो स्वप्नमें पूजित होता हुआ विचरता है, यही आत्मा है, यही अमृत और अभय है।' ऐसा सुनकर इन्द्र शान्तचित्तसे लौटे। परन्तु फिर रास्तेमें उन्होंने सोचा कि यद्यपि यह शरीर अंधा होता है तो भी वह स्वप्न शरीर अन्धा नहीं होता है, शरीर रोगी रहने पर भी स्वप्न शरीर निरोग रह सकता है; फिर भी स्वप्न पुरुषको मानो कोई मारता हो, पीटता हो, तो वह शोक करता है, रोता है और जाग्रत अवस्थामें उसका अस्तित्त्व नहीं रहता। अतएव स्वप्न शरीर कदापि आत्मा नहीं हो सकता। ऐसा सोचकर वे पुनः प्रजापतिके पास लौट आये। बत्तीस वर्षतक पुनः ब्रह्मचर्य पूर्वक वास करने पर उनको प्रजापतिने पुनः उपदेश किया'जिस अवस्थामें यह सोया हुआ दर्शन प्रवृत्तिसे रहित हो स्वप्नका भी अनुभव नहीं करता, वह आत्मा है।' परन्तु इन्द्रने पहलेकी भाँति पुनः मार्गमें ही विचार किया कि इस अवस्थामें तो निश्चय ही इसे यह भी ज्ञान नहीं होता कि 'यह मैं हूँ' और न इन अन्य भूतोंको ही जानता है, यह अवस्था तो एक प्रकारसे विनाश की ही है।' ऐसा सोचकर वे पुनः लौट आये। इस बार पाँच वर्ष ब्रह्मचर्यवास करनेके पश्चात उनको प्रजापतिने उपदेश किया—'इन्द्र! यह शरीर मरणशील है। यह आत्माका अधिष्ठान है। जिस प्रकार घोड़ा या बैल गाड़ीमें जुता रहता है, उसी प्रकार यह आत्मा शरीरमें जुता हुआ है। जो ऐसा अनुभव करता है कि 'मैं देखूँ' वह आत्मा है, उसके देखनेके लिए चक्षु इन्द्रिय है, जो अनुभव करता है कि मैं बोलूँ, वह आत्मा है उसके बोलनेके लिए वागिन्द्रिय है, जो इच्छा करता है कि मैं श्रवण करूँ वह आत्मा है, उसके श्रवण करनेके लिए कान हैं। जो मनन करनेकी इच्छा करता है वह आत्मा है, उसके मनन करनेके लिये मन है।'

इस उपाख्यानसे यह स्पष्ट है कि मूँगफलीकी भाँति हमारे अधिष्ठानमें भी तीन शरीर हैं—(१) स्थूल जड़ पाञ्चभौतिक शरीर, (२) सूक्ष्म चेतनाभास लिंग शरीर तथा (३) उभयातीत शुद्ध आत्म शरीर। इनमेंसे तीनों शरीरोंके अपने-अपने पृथक् धर्म हैं। स्थूल और सूक्ष्म शरीर अनित्य हैं, अतः उनका धर्म भी अनित्य है। आत्मा नित्य है, सनातन है—यह वेद-वेदान्त उपनिषद् और पुराण-प्रतिपादित सिद्धान्त है। अतएव आत्माका ही धर्म नित्य-धर्म है, सनातन-धर्म है। इसीको वैदिक या भागवत धर्म भी कहते हैं।

धर्म किसे कहते हैं, इसे समझ लेना चाहिए। "धृ" धातुसे 'धर्म' शब्द निष्पन्न होता है। जो धारण करता है, वही धर्म है। धर्मका तात्पर्य स्वभावसे है। अर्थात् जिस वस्तुका जो नित्य स्वभाव या गुण है, वही उस वस्तुका नित्य-धर्म है। भगवत् इच्छासे

जभी कोई वस्तु गठित होती है, तभी उस गठनके नित्य सहचर रूप एक स्वभाव भी अवश्यमेव उदित होता है। वह स्वभाव या गुण ही उस वस्तुका नित्य धर्म है। पीछेसे घटनावशतः या किसी अन्य वस्तुके संसर्गसे यदि उस वस्तुमें विकार हो जाता है, तब उसका नित्य-सहचर स्वभाव भी विकृत या परिवर्तित हो जाता है। वह विकृत या परिवर्तित स्वभाव कुछ दिनोंमें दृढ़ होने पर नित्य स्वभावकी भाँति ही प्रतीत होने लगता है। यह बदला हुआ स्वभाव—स्वभाव नहीं है। इसका नाम निसर्ग है। यह निसर्ग स्वभाव के स्थान पर अधिकार जमा कर स्वयं स्वभावके रूप में अपना परिचय देने लगता है। जैसे-जल एक वस्तु है। तरलता उसका स्वभाव या धर्म है। घटना-वश जब जल जमकर बर्फ बन जाता है, तब उसका धर्म या स्वभाव—तरलता भी विकृत होकर कठोरता हो जाती है। अब यहाँ यह काठिन्य गुण—जलका (बर्फका) निसर्ग है जो अब स्वभावके स्थल पर कार्य करता है। परन्तु निसर्ग नित्य नहीं होता—नैमित्तिक होता है, क्योंकि किसी निमित्त (कारण) से उदित होता है और निमित्त दूर होते ही स्वयं दूर हो जाता है—अर्थात् उसका वास्तविक स्वभाव उदित हो पड़ता है। जैसे-गर्मी लगते ही बर्फ पिघल कर तरल हो जाता है।

इस विषयको जीवके सम्बन्धमें भली-भाँति समझनेके लिये "जीव-तत्त्व क्या है और उसका नित्य स्वभाव क्या है ?"—जाननेकी आवश्यकता है। फिर नित्य-धर्म और नैमित्तिक-धर्मको सहज ही समझा जा सकता है। जगतकी सृष्टि स्थिति और प्रलयके कर्त्ता, सबके आदि, स्वयं अनादि सर्वकारण कारण स्वयं-भगवान् कृष्ण ही अद्वयज्ञान परतत्त्व वस्तु हैं। वे केवल निराकार निर्विशेष नहीं; यह तो उनका एक आंशिक भाव मात्र है। वे वास्तवमें अप्राकृत-विग्रह, अचिन्त्य सर्वशक्तिमान एवं षड्ऐश्वर्य शाली हैं। वे परतत्त्व वस्तु श्रीकृष्ण अपनी अचिन्त्य अघटनघटन पटीयसी शक्तिके प्रभावसे—स्वरूप, तद्रूपवैभव, जीव और अन्तर्यामी चार रूपोंमें नित्य प्रकाशित हैं। सूर्य, सूर्यमण्डल, किरणगत परमाणु और सूर्यकी प्रतिच्छवि कुछ तुलनाके स्थल हो सकते हैं। श्रीजीव गोस्वामी भी कहते हैं—

एकमेव परमं तत्त्वं स्वाभाविकाचिन्त्यशक्त्या सर्वदैव स्वरूप-तद्रूपवैभव-जीव-प्रधानरूपेण चतुर्द्धा-वतिष्ठते, सूर्यान्तर-मण्डलस्थित-तेज इव, मण्डल, तद्बहिर्गत तद्रश्मि, तत्प्रतिच्छवि रूपेण।

यहाँ पर परतत्त्व श्रीकृष्णको पूर्णचित् तत्त्व रूपी सूर्य मानकर जीवको उसके किरणगत परमाणु स्थानीय बतलाया गया है। गीतामें 'ममैवांशो जीव-लोके जीव भूतः सनातनः।' बृहदारण्यकमें—"यथाग्ने क्षुद्रा विस्फुलिङ्गाः" श्वेताश्वतरोपनिषद्में—"बाला-ग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। भागो जीवः स विज्ञेयः स च अनन्ताय कल्पते॥" श्रीचैतन्यचरिता-मृतमें—"सूर्यांशु किरण येन अग्निज्वालाचय।"—जीवके स्वरूपका वर्णन मिलता है। उनके अनुसार जीव सर्वशक्तिमान श्रीकृष्णकी तटस्था शक्ति परिणत विभिन्नांश तत्त्व हैं। श्वेताश्वतरोपनिषद्के "परास्य शक्ति विविधैव श्रुयते" के अनुसार परमेश्वर की एक ही पराशक्ति अनेक शक्तियोंके रूपमें प्रकाशित होती हैं, जिनमेंसे चित्शक्ति, जीवशक्ति और मायाशक्ति—ये तीन शक्तियाँ प्रधान हैं। इनमेंसे जीवशक्ति चित्

और माया इन दोनों शक्तियोंके बीच स्थित रहकर भगवत् इच्छासे अनन्त कोटि ऐसे क्षुद्र-क्षुद्र अणुचित् जीवोंको प्रकाशित करती है, जो स्वरूपतः चिद्वस्तु होकर भी चिद् और माया दोनों जगतोंमें विचरण करनेवाले स्वभावयुक्त होते हैं। इसलिये इस शक्ति को तटस्था और उससे परिणत जीवोंको तटस्थ धर्मी जीव भी कहा जाता है। चूँकि 'शक्ति-शक्तिमतोरभेदः' इस वेदान्त सूत्रके अनुसार कृष्ण और कृष्णशक्ति अभिन्न हैं, इसलिये कृष्ण और कृष्णशक्ति परिणत जीव भी अभिन्न ही हैं। परन्तु यह अभिन्नता केवलमात्र चिद् वस्तुगत दृष्टिसे ही है अर्थात् कृष्ण चिद्वस्तु हैं, जीव भी चिद्वस्तु हैं, केवल इसी विषयमें दोनोंमें साम्य है। परन्तु कृष्ण परिपूर्ण चिद्वस्तु एवं मायापति हैं और जीव अणुचिद्वस्तु हैं तथा तटस्थ-धर्म वशतः शुद्धावस्थामें भी मायावश हो पड़ने योग्य होते हैं; कृष्ण-सर्वशक्तिमान हैं, जीव निःशक्तिक हैं। अतएव ब्रह्म एवं जीवमें नित्य भेद भी है। जीव और ब्रह्मका यह भेद और अभेद मानव बुद्धिकी चिन्तासे अतीत होनेके कारण दार्शनिक दृष्टिसे यह अचिन्त्य भेदाभेद सिद्धान्त कहलाता है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुने श्रीरामानुज के विशिष्टाद्वैतमत, श्रीमध्वके शुद्धद्वैतमत, श्रीविष्णु-स्वामीके शुद्धाद्वैतमत तथा श्रीनिम्बादित्यके भेदाभेद मत-आदि पूर्व वैष्णवाचार्योंके वेदके एक देशीय मतोंका पूर्ण समन्वय कर वेदके इस सर्वदेशीय मत अचिन्त्यभेदाभेद सिद्धान्तका प्रचार किया है।

अस्तु, कृष्ण अंशी हैं, जीव इनका विभिन्नांश तत्त्व हैं; कृष्ण आकर्षक हैं, जीव आकृष्ट हैं; कृष्ण सेव्य हैं, जीव सेवक हैं। अतएव अणुचिद् जीवका धर्म या स्वभाव ही है—पूर्णचित् वस्तु श्रीकृष्णकी सेवा करना। यह सेवा ही अप्राकृत "प्रेम-धर्म" कहलाता है। अतएव कृष्ण-सेवा या कृष्ण-प्रेम ही सारे जीवोंका स्वरूपगत नित्य-धर्म है—"जीवेर स्वरूप हय नित्य कृष्णदास" (चै० च०) परन्तु अणुचेतन होनेके कारण तटस्थगठनवशतः जीव यदि कृष्ण-विमुख हो पड़ता है अर्थात् कृष्ण-सेवासे विमुख हो जाता है, तब कृष्णकी मायाशक्ति उस जीवके शुद्ध अणुचित् स्वरूपको अपने क्रमशः लिङ्ग और स्थूल दो शरीरों से आच्छादित कर चौरासी लाख प्रकारकी योनियों में भ्रमण कराती हुई उस समय तक त्रितापोंसे दग्ध करती रहती है, जब तक कि वह पुनः कृष्ण-सान्मुख्य लाभ कर उन दोनों मायिक शरीरोंसे छुटकारा प्राप्त न कर ले। जिस समय जीवका शुद्ध स्वरूप मायिक आवरणों द्वारा आवृत हो पड़ता है, उस समय उसका नित्य स्वभाव या धर्म भी विकृत या परिवर्त्तित हो पड़ता है। यह विकृत स्वभाव या धर्म ही नैमित्तिक धर्म है। जिस प्रकार जल हिम होने पर कठोर हो पड़ता है। यह नैमित्तिक धर्म ही देश-काल-पात्र भेदसे भिन्न-भिन्न देशोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारका हो पड़ता है।

जगतमें जितने प्रकारके धर्म प्रचलित हैं, उन सबको साधारणतः तीन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—नित्य-धर्म, नैमित्तिक-धर्म और अनित्य-धर्म। जिन धर्मोंमें ईश्वरकी सत्ता तथा आत्माकी नित्यता स्वीकृत नहीं होती—वे अनित्य-धर्म हैं। जिन धर्मोंमें ईश्वर और आत्माकी नित्यता तो स्वीकृत है, परन्तु केवल अनित्य उपायोंद्वारा ही ईश्वरकी कृपा प्राप्त होनेकी चेष्टा देखी जाती है, वे नैमित्तिक-धर्म हैं और जिनमें विमल प्रेम द्वारा कृष्ण

दास्य लाभ करनेके लिये प्रयत्न होता है, वे नित्य-धर्म हैं। नित्य-धर्म देश, जाति और भाषाके भेदसे पृथक् पृथक् नामोंसे परिचित होने पर भी एक है और यही जीवमात्रका परम-धर्म है। भारतमें वैष्णव-धर्म के नामसे प्रचलित धर्म ही नित्य एवं परम-धर्मका सर्वोच्च आदर्श है। नैमित्तिक धर्मोंमें साक्षात् चिद्नुशीलन अर्थात् नित्य-धर्मका अनुशीलन नहीं होता बल्कि उनमें दूरसे नित्य-धर्मका उद्देश्य होता है। अतएव आंशिक रूपमें उनकी उपयोगिता है। परन्तु आत्म-धर्म रहित अनित्य धर्म-समूह—पशु-धर्म हैं और त्याज्य हैं—

आहार निद्रा भय मैथुनञ्च
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषः
धर्मेण हीना पशुभिः समाना॥

जिस धर्ममें आत्म-अनुशीलन नहीं होता, बल्कि आहार, निद्रा, भय और मैथुनकी समृद्धिकी ही साधना होती है, जिस धर्ममें अनित्य-विषयभोगोंकी समृद्धिमें ही मनुष्य जीवनकी इतिकर्तव्यता मानी जाती है—वह धर्म पशु-धर्म है। उससे मनुष्य जीवनका उद्देश्य, जो आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति और अमल सुखकी प्राप्ति है, वह कदापि पूर्ण नहीं हो सकता। इसीलिये श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—

कर्मण्यारभमाणानां दुःखहत्यै सुखाय च।
पश्येत् पाकविपर्यासं मिथुनीचारिणां नृणाम्॥
(भा० ११।३।१८)

संसारमें दुःख-निवृत्ति एवं सुख-प्राप्तिके लिये मनुष्य एकत्र होकर कर्मोंमें प्रवृत्त होते हैं, परन्तु फल विपरीत ही देखा जाता है अर्थात् न तो दुःख ही दूर होता है और न सुख ही प्राप्त होता है। इसलिये श्रीमद्भागवत का सम्पूर्ण विश्वके लोगोंके लिये सर्वोत्तम उपदेश है—

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहु संभवान्ते
मानुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु यावत्
निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात्॥
(भा० ११।९।२९)

अर्थात् मनुष्य जन्म अत्यन्त दुर्लभ है। यह ८४ लाख योनियोंमें भ्रमण करते-करते बड़े सौभाग्यसे मिलता है। यह अनित्य होने पर भी परमार्थप्रद है। अतएव धीर व्यक्ति सिरपर सर्वदा ही मंडराने वाली अवश्यंभावी मृत्युके पहले ही क्षणभरका विलम्ब किये बिना चरम कल्याणके लिये चेष्टा करें।

कुछ लोग कर्मको, कुछ ज्ञानको और कुछ लोग योग आदिको चरम कल्याणकी प्राप्तिका उपाय मानते हैं; परन्तु श्रीमद्भागवत इसका खण्डन करते हैं—

नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम्।
कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम्॥
(श्रीमद्भा० १।५।१२)

अर्थात् जब भगवद्भक्ति रहित नैष्कर्म्य रूप निर्मल ब्रह्म ज्ञानकी ही शोभा नहीं होती, तब साधन और सिद्धि दोनों ही अवस्थाओंमें दुःखपूर्ण साधारण काम्यकर्मोंकी तो बात ही क्या? और भी देखिये—

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव ।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथाभक्तिर्ममोर्जिता ॥

अतएव भगवद्भक्ति ही चरमकल्याणकी प्राप्तिका एकमात्र उपाय है। श्रुतियाँ भी ऐसा ही उपदेश करती हैं--

'भक्तिरेवैनं नयति भक्तिरेवैनं दर्शयति भक्तिवशोः पुरुषो भक्तिरेव भूयसी'।

अर्थात् भक्ति ही जीवको भगवान्का दर्शन कराती है। वे परम पुरुष भगवान् एकमात्र भक्तिके ही वशीभूत हैं। अतएव भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है। यही जीवों नित्य-धर्म है। श्रीमद्भागवतमें भी भगवान् कृष्ण कहते हैं--'भक्त्याहमेकया ग्राह्यः।" इस भक्तिका स्वरूप क्या है ? शाण्डिल्य सूत्रमें कहते हैं--'सा परानुरक्तिरीश्वरे।' अर्थात् ईश्वरमें परानुरक्ति ही भक्ति है। साथ ही वह 'ईशवशीकरणी वृत्ति" एवं "अमृतरूपा" भी है। श्रीरूप गोस्वामीने शुद्ध भक्तिका स्वरूप बतलाते हुए कहा है--

अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम् ।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥
(भक्ति रसामृतसिन्धु)

अर्थात् लौकिक और पारलौकिक समस्त प्रकारकी स्वसुखभोग आदिकी कामनाओंसे रहित होकर भगवद्-बहिर्मुख कर्म, ज्ञान, योग, तपस्या आदिका सर्वथा त्याग कर अनुकूल भावके साथ समस्त इन्द्रियोंके द्वारा कृष्णानुशीलनको शुद्धा भक्ति कहते हैं। भक्तिकी दो अवस्थाएँ हैं—साधनावस्था और सिद्धावस्था। साधनावस्थामें वह साधन भक्ति कहलाती है और सिद्धावस्थामें साध्यभक्ति या प्रेमभक्ति। नित्यसिद्ध कृष्ण-प्रेम ही साध्यभक्ति है। यही जीवमात्रका नित्यधर्म या स्वरूप धर्म है। कृष्ण-प्रेम रूप साध्यभक्ति नित्यसिद्ध होने पर भी जड़बद्ध जीवोंमें वह आच्छादित रहती है। ऐसी दशामें उसे प्रकट करनेके लिये इन्द्रियोंके द्वारा जब उसीकी साधना होती है, तब उसे साधन भक्ति कहते हैं। यह साधन भक्ति भी नित्य-धर्म ही है। साधन भक्ति नित्य-धर्मकी अपक्व अवस्था है और साध्यभक्ति जो प्रेम है, वह नित्यधर्मकी परिपक्वावस्था है। नित्यधर्म एक ही है, केवल अवस्थाएँ दो हैं।

साधन भक्ति दो प्रकारकी होती है—वैधी और रागानुगा। साधकके हृदयमें जब तक श्रीकृष्णके प्रति स्वाभाविक राग और रुचि नहीं होती, उस समय वह शास्त्रकी विधियोंका कर्त्तव्य मानकर पालन करता है। इस प्रकार शास्त्रशासन द्वारा जीव कृष्ण-भक्तिमें प्रवृत्त होता है। ऐसी दशामें जो साधन भक्ति होती है, वह वैधी साधन शक्ति कहलाती है। परन्तु जब हृदयमें कृष्णके प्रति स्वाभाविक राग और रुचि उत्पन्न होती है, उस समय शास्त्र या युक्तिकी अपेक्षा किये बिना ही कृष्णके अनुरागीजनों—व्रजवासियोंके रागात्मिक भावोंके प्रति लुब्ध होकर उनका अनुसरण करते हुए जो साधन करते हैं, उसे रागानुग साधन भक्ति कहते हैं। साधारणतः साधन भक्तिके ६४ अङ्ग हैं, जिनमें सद्गुरु पदाश्रय करके श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन रूप नवधाभक्ति श्रेष्ठ है। नवधा-भक्तिमें भी श्रवण, कीर्तन और स्मरण ये तीन अङ्ग श्रेष्ठतर हैं तथा हरिकीर्तन श्रेष्ठतम है। हरिनाम-संकीर्तनमें भक्तिके समस्त अङ्गोंका पूर्णरूपसे समावेश है। नाम और नामी अभिन्न तत्त्व हैं। सभी शास्त्रोंमें

सर्वत्र ही हरिनामकी प्रचुर महिमाका वर्णन पाया जाता है। विशेषकर कलियुगके लिये हरिनाम कीर्तन ही एकमात्र धर्म या गति है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

(बृहन्नारदीय पु०)

श्रीमद्भागवतमें भी श्रीनाम-कीर्तनको जीव-मात्रका परम धर्म कहा गया है—

एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां धर्मः परः स्मृतः ।
भक्तियोगो भगवति तन्नाम-ग्रहणादिभिः ॥

(भा० ६।३।२२)

श्रीरूप गोस्वामीने नित्यधर्म अनुशीलनका जो क्रम विकाश दिखलाया है वह साधन जगत्में अभूत-पूर्व एवं चमत्कारपूर्ण है—

आदौ श्रद्धा ततः साधुसंगोऽथ भजन क्रिया ।
ततोऽनर्थ निवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठा रुचिस्ततः ॥
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति ।
साधकानामयं प्रेम्नः प्रादुर्भावे भवेत् क्रमः ॥

(भ. र. सि. पूर्व. वि. ४।११)

सौभाग्यवान व्यक्तिको सर्वप्रथम पूर्वकृत सुकृति पुञ्जके प्रभावसे भक्तिके प्रति श्रद्धा होती है। यह श्रद्धा ही भक्तिलताका बीज-स्वरूप है। तदनन्तर साधु-गुरु-सङ्ग, तत्पश्चात उनके आनुगत्यमें भजन-क्रिया, उससे अनर्थ-निवृत्ति, फिर क्रमशः निष्ठा, रुचि, आसक्ति और भाव उदित होता है। भावको प्रेमांकुर कहते हैं। यह भाव ही परिपक्वावस्थामें प्रगाढ़ होने पर प्रेम कहलाता है। यही प्रेम जीव-मात्रका नित्य-धर्म है। स्वयं भगवान श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुकी यही शिक्षा है। यही वेद-वेदान्त, उप-निषद् एवं पुराणादि शास्त्रोंका परम निगूढ़ प्रतिपाद्य विषय है।

आजकल संसारमें प्रचलित अधिकांश धर्मसमूह श्रीमद्भागवतके शब्दोंमें कैतव-धर्म अर्थात् छल धर्म हैं। चैतन्य-भागवतका भी कथन है—पृथिवीते धर्म नामे यत कथा चले। भागवत कहे ताहा परिपूर्ण छले॥ जिस धर्ममें केवल माखन-रोटीके लिये प्रार्थना ही सर्वोपरि ईश्वरोपासना है, जिस धर्ममें हिन्दूसे मुसलमान, बौद्ध, ईसाई और उनसे पुनः हिन्दू आदि बनाना ही मूलभूत नीति है, जिस धर्ममें जीवको ही ईश्वर मानकर तथा केवल मनुष्य शरीरको ही जीव मानकर उसके शारीरिक रोगकी निवृत्ति करना, दरिद्र नारायणको खिचड़ी खिलाना, अस्पताल आदिका निर्माण करना तथा निरीश्वर भौतिक शिक्षा-भवन आदि निर्माण ही भगवानकी सर्वश्रेष्ठ सेवा है, जिस धर्ममें नित्य और अनित्य सभी धर्मों-को एक मान कर टके सेर भाजी टके सेर खाजाकी नीति अपनायी जाती है, जिन धर्मोंमें नित्य धर्मकी उपेक्षा करके धर्म-निरपेक्षताका ढोल पीट कर विश्व-प्रेम और मानव सेवाके नाम पर पशु, पक्षी, अण्डे और निरीह प्राणियोंकी बलि चढ़ाई जाती है तथा राष्ट्रसेवाका राग अलापा जाता है, वे धर्म समूह अनित्य धर्म हैं। इनसे जगतका नित्य कल्याण कदापि साधित नहीं हो सकता। हाँ, नित्य धर्मको सर्वोच्च मन्दिर मान कर उसके सोपानके रूपमें इन धर्मोंकी कहीं-कहीं आंशिक रूपमें उपयोगिता तो स्वीकृत है, परन्तु जहाँ वे नित्य धर्मका विरोध करते हैं, उसे आच्छादित करते हैं अथवा उसे अपना

अनुगामी होनेके लिये बाध्य करते हैं, वहाँ वे सर्वथा त्याज्य हैं। नित्यधर्म-रहित नैतिकता, मानवता या विश्वप्रेम केवल थोथा है, उसका कोई महत्व नहीं। नहीं। मानवता या नैतिकताका यथार्थ और एकमात्र लक्ष्य है—भगवत् प्रेम।

मेरी समझसे यदि एक देश दूसरे देशको पद-दलित कर उसे चिर पराधीन बना ले, उसके समस्त रत्न भण्डारको लूट ले जाय, उसके ग्रन्थागारको भस्मीभूत कर दे तथा उसके कला-कौशल और स्थपति विद्या आदिको विध्वंश कर डाले, तो भी उस देशका, उस जातिका, उस समाजका कुछ भी नहीं बिगड़ सकता यदि वहाँ एक भी नित्यधर्मका विशुद्ध याजनकारी हरिसंकीर्तन-यज्ञकी अग्निको उस समय भी प्रज्ज्वलित बनाये रखे। इसीसे जगतका, देशका, समाजका, जातिका और व्यक्तिका नित्य-कल्याण सम्भव है। मैं अन्तमें धर्म संस्थापक स्वयं भगवान श्रीकृष्णके चरम गीतोपदेश-वाणीको दुहराते हुए अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

वृन्दावनकी पृष्ठभूमि

(ख) भौतिक दृष्टिसे वृन्दावन

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष ९ संख्या ६-७ पृष्ठ १४७ से आगे]

परम वैष्णवाचार्योंका पावन योग

"परम पूज्य श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुजी तथा उनके अनुगामी श्रीलोकनाथ, श्रीभूगर्भ, श्रीरूप, श्रीसनातन, श्रीनारायण भट्ट आदि गोस्वामी वर्ग एवं श्रीवल्लभाचार्य, गोस्वामी हितवंश और स्वामी हरिदास आदि वैष्णवाचार्योंके आगमनके समय वृन्दावन एक छोटी सी निर्जन बस्तीके रूपमें था। गोस्वामी राधाचरणजीके शब्दोंमें—

"सन् १५०५ ई० में जब श्रीचैतन्य महाप्रभुजी श्रीवृन्दावन आये थे, तो उस समय वृन्दावन निर्जन था। *** वृन्दावनमें केवल कालीदह तीर्थ उस समय था। सन् १५२४ ई० में श्रीसनातन गोस्वामीजी ने प्रथम ही प्रथम इस निबिड़ बनमें बास किया और सन् १५३४ ई० में श्रीमदनमोहनजीकी मूर्त्तिको मथुरा के किसी चौबेके घरसे लाकर यहाँ विराजमान किया।"

('भारतेन्द्र'—१८ जून १८८६ ई० पुस्तक ४ अङ्क ३)

उक्त वैष्णवाचार्योंने वृन्दावन बास कर यहाँ जिस भक्ति रससे ओत-प्रोत संस्कृत और ब्रजभाषा-साहित्य की सर्जनाकी, उससे करोड़ों मानव प्रभावित हुए। फल-स्वरूप भक्तिरसके आस्वादन-हेतु अनेकों भक्तोंका आगमन यहाँ होने लगा और भागवत-धर्म के विभिन्न नवीन श्रोतोंका उद्भव भी अनेकों सम्प्रदायोंके रूपमें होने लगा।

श्रीमहाप्रभुजीके जीवन-वृत्तसे ज्ञात होता है कि

वे श्रीजगन्नाथपुरीसे आकर (सन् १५०५ ई०) वृन्दावन और मथुराके बीचोबीच अक्रूर घाटमें कुछ दिन तक ठहरे। प्रतिदिन प्रातःकाल वृन्दावनमें यमुनाके किनारे अत्यन्त निर्जन स्थान—'इमलीतला' में उपस्थित होते; वहीं भावमग्न होकर श्रीकृष्ण कीर्तन करते; दो पहरको विश्राम करते फिर शामको अक्रूर घाट पहुँच जाते। रात वहीं किसी प्रकार काट कर सबेरे पुनः वृन्दावन वहीं पहुँच जाते, इसी समय उन्होंने व्रजमण्डलके मथुरा, राधाकुण्ड, गोवर्धन, काम्यवन, नन्दगाँव बरसाना, महावन, गोकुल आदिका दर्शन किया, उनमेंसे अनेक लुप्त-प्राय तीर्थोंका पुनरुद्धार किया तथा उनका माहात्म्य प्रचार किया। (सविस्तारके लिए चैतन्य चरितामृत मध्य खण्ड १८ वाँ अध्याय देखिए) श्रीचैतन्य महाप्रभुने अपने आगमनसे पूर्व श्रीलोकनाथ और श्रीभूगर्भ गोस्वामी द्वयको व्रजमण्डलको पुनः प्रकाशित करनेके उद्देश्यसे वृन्दावन भेजा था और तदोपरान्त उन्हीं की आज्ञासे श्रीरूप, श्रीसनातन, श्रीगोपाल भट्ट, श्रीरघुनाथ भट्ट, श्रीरघुनाथदास, श्रीजीव और श्रीकृष्णदास कविराज आदि गोस्वामी वर्ग भी लुप्त तीर्थोंके पुनरुद्धार करनेकी दृष्टिसे वृन्दावनमें आये। ये सभी गोस्वामी वृन्दावनमें विपुल वैभवोंसे युक्त विशाल मन्दिरोंमें श्रीविग्रहोंकी स्थापना करके जीवनके अन्तिम दिन तक उनकी भावमयी सेवा करते हुए भजन किया। व्रजमण्डलके अनेक स्थलोंका प्रकाश किया। वहाँ सरोवर घाट, मंदिर तथा भजन-कुटी आदिका निर्माण कराया। व्रज-मण्डलका, विशेष करके वृन्दावनका, सारे शास्त्रोंसे सार ग्रहण कर माहात्म्य-ग्रन्थ तथा भक्तिसे सम्बन्धित अनेकानेक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखे जो ग्रन्थ-समूह संस्कृत भाषाके, धर्म-सम्प्रदायके लिए ही नहीं, अपि तु साधारण जनताके लिए भी बड़े महत्त्वके हैं। श्री वल्लभ और निम्बार्क सम्प्रदायोंके तत्कालीन आचार्योंने भी वृन्दावनके लुप्त गौरवकी पुनः प्रतिष्ठाके पावन कार्यमें अकथनीय योगदान किया।

सन् १५३६ ई० में गौड़ीय आचार्य श्रीरूप गोस्वामीजीने वृन्दावनमें श्रीगोविन्द-विग्रहकी सेवा प्रकट की। सन् १५६० ई० में श्रीरघुनाथ भट्टने शिष्य जयपुर नरेश मानसिंहजीने श्रीगोविन्दजीका विशाल मंदिर बनवा कर उसकी सेवापूजाकी भी उचित व्यवस्था की।

मुगलकालीन वृन्दावन

अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँके शासनकालमें अनेकों मठ-मंदिरों एवं आश्रमोंका नव-निर्माण एवं पुनरुद्धार यहाँ हुआ। अकबरने तो अपने कोषाध्यक्ष टोडरमलको इस निर्माण कार्य हेतु कई माह तक वृन्दावनमें ही नियुक्त कर रखा था। श्रीनारायण भट्टजी की आज्ञानुसार टोडरमलने मंदिरोंके लिए सुन्दर सिढ़ियों, कुण्डों, हिंडोलों एवं रास मण्डलोंका निर्माण तथा प्राचीन मंदिरोंका जीर्णोद्धार किया—

सोपानं तत्र कर्त्तव्यं किंचित किंचित्वयानघ।
हिंडोलकादिकं स्थानं कुत्रचित् रासमण्डलम्॥
प्राचीन मन्दिरं यत्र जीर्णोद्धारं कुरुष्व तत्।
टोडरमलोऽपि धर्मात्मा तत्सर्वं कृतवांस्तदा॥
सुदृढं कारयामास बलदेवस्य मन्दिरम्।

(जानकी प्रसाद भट्ट कृत श्रीनारायण भट्ट चरितामृतम् पृ० ३७, श्लोक ३१-३३)

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि श्रीगोपीनाथ, मदन-मोहन, राधावल्लभ, युगलकिशोर, गोविन्ददेव आदि प्रसिद्ध मन्दिरोंका निर्माण मुगल सम्राट अकबरके ही शासन कालमें यहाँ सम्पन्न हुआ। अपनी धार्मिक उदारताके कारण अकबर हिन्दू जनताके हृदयको जीत चुका था। सन् १५६२ ई० वह स्वयं वृन्दावन आया और यहाँ के करीलकुञ्जोंमें छिपे हुए साधु-महात्माओंके दर्शन लाभसे वह इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने वर्षोंसे प्रारम्भ "वृन्दावन-यात्रा कर" से यात्रियोंको सर्वदाके लिए मुक्तकर आप, सेठ-साहुकारोंको यहाँ देव-मन्दिर तथा आश्रम बनवानेके लिए सहर्ष आज्ञा-प्रदान कर उन्हें इस महान् धर्म यज्ञके लिए प्रोत्साहित किया। परिणाम स्वरूप यहाँ बहुतसे नवीन घाटों, बाग-बगीचों, सरोवरों और विशाल देव भवनोंके निर्माणकी एक होड़ धनिक समाजमें उत्पन्न होगई। संगीत-साहित्यके साथ चित्र, मूर्त्ति एवं वस्तु-कलाकी भी आशातीत उन्नति यहाँ होने लगी। इस प्रकार ई० १६ वीं शतीमें वृन्दावनका महत्त्व अत्यधिक बढ़ जानेके कारण यह श्रीसम्पन्न स्थल भारतवर्ष का एक प्रमुख सांस्कृतिक केन्द्र माना जाने लगा।

जहाँगीर और शाहजहाँ के राजत्व कालमें भी यहाँ पूर्ण शान्ति रही, किसी प्रकारका भी धार्मिक-संघर्ष यहाँ स्थान न पा सका। जहाँगीरके समय ही में ओरछा नरेश श्रीवीरसिंहजीने ३३ लाखकी लागात का श्रीकेशवदेवजीका एक विशाल मन्दिर, वृन्दावनसे ६ मीलकी दूरीपर श्रीकृष्ण जन्मभूमि (मथुरा) में निर्मित किया।

औरङ्गजेब (सन् १६५८-१७०७ ई०) की असहिष्णुतापूर्ण धार्मिक नीतिने अपने पूर्वजोंकी उदार धार्मिकनीतिको उलट दिया। सन् १६६९ई. के रमजान जैसे पवित्र मासमें उसने मथुरा वृन्दावनके देवालयों को ध्वंश करना प्रारम्भ किया। राजा मानसिंह द्वारा निर्मित (सन् १५९० ई.) श्रीगोविन्द देवजी का लाल पत्थरका विशाल मन्दिर तथा मुलतान देशीय सेठ कृष्णदास कपूर द्वारा निर्मित श्रीमदन मोहनजीके भव्य प्रसादको औरङ्गजेबने सन् १६७०ई. में ध्वंश कर डाला, उसके आतंकोंसे भयभीत होकर भक्तजनोंने श्रीविग्रहोंको वृन्दावनसे यत्र-तत्र भेजना प्रारम्भ कर दिया। इनमेंसे प्रमुख श्रीविग्रह श्रीगोविन्ददेव, मदनमोहन (इस समय करौलीमें यह श्रीविग्रह विराजमान हैं), गोपीनाथ, राधादामोदर, राधामोहन, राधारमणसुन्दर, राधाविनोद, गोकुलानन्दजी थे, जिन्हें जयपुर भेज दिया गया था। वास्तवमें हिन्दूधर्म-विरोधी औरङ्गजेब मथुरा और वृन्दावनका नाम ही मिटा देना चाहता था। उसने इनका नाम क्रमशः इस्लामाबाद और मोमिनाबाद (भिखारियोंकी बस्ती) रख दिया (देखिये प्रो० चिन्तामणि शुक्ल कृत मथुरा जनपदका राजनैतिक इतिहास पृष्ठ १४) किन्तु हर्ष है कि उक्त दोनों नाम औरङ्गजेबके साथ ही (सन् १७०७, ई.) मिट गये। औरङ्गजेबकी संकुचित धार्मिक नीतिसे तपे हुए भरतपुरके जाटोंने अपने शासन कालमें (सन् १७१७-१७८८ ई.) बहुतसे देव मन्दिरों, घाटों और धर्मशालाओंका निर्माण कर अत्यन्त सराहनीय काम वृन्दावनमें किया। इसी काममें श्रीगोविन्ददेव और श्रीमदन मोहनजीके प्रतिभू-विग्रहोंकी स्थापना (सन् १७४८ ई. में) यहाँ हुई। (क्रमशः)

प्रचार-प्रसङ्ग

(क) विभिन्न स्थानोंमें शुद्धा भक्तिका प्रचार—

कलियुग पावनावतारी श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके नित्य पार्षद, विश्वव्यापी गौड़ीय मठके प्रतिष्ठाता नित्य-लीला-प्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीके **प्रिय-पार्षद एवं अधस्तनवर श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके संस्थापक एवं नियामक आचार्य ॐविष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान गोस्वामी महाराज** भारतके विभिन्न स्थानोंमें मठ- मन्दिर एवं भक्ति-प्रचार केन्द्रों की स्थापना कर, विभिन्न भारतीय भाषाओंमें पारमार्थिक पत्रिकाएँ प्रकाशित कर, बृहद्-मृदङ्ग रूप मुद्रण-यंत्रोंकी स्थापना कर भक्ति-ग्रन्थोंका प्रकाशन कर, श्रीधाम-परिक्रमाका पुनः प्रचलन कर, भारतके विभिन्न स्थानोंमें स्वयं भ्रमण करके, योग्य एवं विद्वान् त्रिदण्डी-यतियों एवं ब्रह्मचारियोंको गाँव-गाँवमें भेज कर, नाना-स्थानोंमें श्रीविग्रह मठ-मन्दिर एवं पादपीठ आदिकी स्थापना कर धर्म निरपेक्ष निरीश्वर जड़-सर्वस्ववादी युगमें भी श्रीगौर-प्रदर्शित शुद्धाभक्तिका प्रचार कर विश्व का कल्याण कर रहे हैं। आजकल उनकी नियामकतामें निम्नलिखित प्रचारक विभिन्न स्थानोंमें प्रचार कर रहे हैं—

समितिके वाग्मी-प्रवर त्रिदण्डी स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त त्रिविक्रम महाराज कतिपय ब्रह्मचारियों के साथ बर्द्धमान जिलेके अन्तर्गत कालना सब-डिविजनके गाँवोंमें प्रचार कर रहे हैं।

(२) श्रीभागवत-पत्रिकाके सम्पादक—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज श्रीइन्द्रप्रस्थ गौड़ीय मठ, दिल्लीके प्रथम वार्षिक उत्सवके उपलक्षमें आयोजित विद्वत् धर्म-सभामें पाण्डित्यपूर्ण भाषण कर वहाँसे लौट कर श्रीधाम मथुरा और आस-पासमें शुद्धा भक्तिका प्रचार कर रहे हैं।

(३) समितिके अन्यतम प्रचारक त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त उद्धमन्थी महाराज, श्रीवृषभानुदास ब्रह्मचारी और श्रीनन्दगोपाल ब्रह्मचारी आदि के साथ चौबीस परगनेके सुन्दरवन अंचलमें प्रचार कार्य कर रहे हैं।

(४) समितिके प्रचारक त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त विष्णु दैवत महाराज बालेश्वर जिले के गाँवोंमें (उड़ीसा) में कुछ ब्रह्मचारियोंके साथ प्रचार कर रहे हैं।

(५) श्रीपाद निमाई चरण ब्रह्मचारी, "व्याकरण तीर्थ" जी श्रीगोविन्ददास ब्रह्मचारी तथा श्रीहरि बन्धु ब्रह्मचारीके साथ 'चौबीस-परगना में।

(६) श्रीपाद श्रीहरि ब्रह्मचारी 'भक्ति-प्रतापजी' श्रीराघव चैतन्य ब्रह्मचारी तथा श्रीहरि साधन ब्रह्मचारीके साथ मेदिनीपुर जिलेमें।

(७) श्रीपाद रसिक मोहन ब्रजवासीजी, श्रीकनाई दास ब्रह्मचारी तथा श्रीमाधवदास ब्रह्मचारीके साथ चौबीस परगनेमें।

(८) श्रीपाद गजेन्द्रमोचन ब्रह्मचारी, श्रीपूर्णप्रज्ञ ब्रजवासी तथा छोटे श्रीमाधवदास ब्रह्मचारी मेदिनीपुर जिलेमें।

श्रीइन्द्रप्रस्थ गौड़ीय मठमें प्रथम वार्षिक उत्सव

श्रीगौड़ीय संघके अन्तर्गत श्रीइन्द्रप्रस्थ गौड़ीय मठ, दीनाका तालाब, सब्जीमण्डी दिल्लीका प्रथम वार्षिक महोत्सव गत २९ और ३० जनवरीको समारोहके साथ सम्पन्न हुआ है। इसके उपलक्षमें ३० जनवरीके शामको दिल्लीके चीफ कमिश्नर माननीय श्रीधर्मवीरजीके सभापतित्वमें एक विद्वद् धर्म सभाका आयोजन किया गया था, जिसका उद्घाटन श्रीगौड़ीय संघके प्रतिष्ठाता परिव्राजकाचार्य त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति सारङ्ग गोस्वामी महाराजजीने किया। इस सभामें संघकी ओरसे माननीय चीफ कमीश्नर महोदय एवं अन्यान्य विशेष व्यक्तियोंको भक्तिपूर्ण उपाधियोंके वितरण एवं स्वागत समितिके अध्यक्ष द्वारा संक्षिप्त भाषणके पश्चात् निम्नलिखित त्रिदण्डिचरणों एवं विद्वानोंके भाषण हुए हैं—

(१) त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति सौरभ भक्तिसार महाराज।
(२) ,, ,, वेदान्त स्वामी महाराज।
(३) ,, ,, वेदान्त नारायण महाराज।
(४) ,, ,, कमल पर्वत महाराज।
(५) डा० श्री आर. वी. जोशी, एम. ए. पी. एच. डी. डीलिट (पेरिस)
(६) डा० श्री के. डी. भारद्वाज एम. ए. पी. एच. डी. शास्त्री, पुराणाचार्य विद्यासागर।

---

* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ
तेघरिपाड़ा, पो० नवद्वीप, (नदीया)

सादर सम्भाषणपूर्वक निवेदन—

कलियुग-पावनावतारी स्वयं भगवान् श्रीश्रीशचीनन्दन गौरहरि की निखिल भुवन-मङ्गलमयी आविर्भाव तिथि-पूजा (फाल्गुनी पूर्णिमा) के उपलक्ष्यमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति के उद्योग से उपरोक्त ठिकाने पर आगामी ६ चैत्र, २३ मार्च, सोमवारसे १५ चैत्र, २९ मार्च रविवार पर्यन्त सप्ताहकालव्यापी एक विराट महोत्सव का अनुष्ठान होगा। इस महदनुष्ठानमें प्रतिदिन प्रवचन, कीर्त्तन, वक्तृता, इष्ट-गोष्ठी, श्रीविग्रह-सेवा, महाप्रसाद वितरण प्रभृति विविध भक्त्यङ्ग याजित होंगे।

इसके उपलक्ष्य में श्रीश्रीनवद्वीपधाम के अन्तर्गत नौ द्वीपों का दर्शन तथा तत्तत्स्थान-माहात्म्य-कीर्त्तन करते हुए सोलह-कोश की परिक्रमा होगी। गत वर्ष की तरह इस वर्ष भी श्रीनृसिंहपल्ली, मामगाछी एवं श्रीधाम मायापुरमें शिविरादि में वास कर निशि-यापनपूर्वक परिक्रमा करने की सुव्यवस्था की गई है।

धर्मप्राण सज्जन-वृन्द उक्त भक्ति-अनुष्ठान में सबान्धव योगदान कर समिति के सदस्यवर्ग को परमानन्दित एवं उत्साहित करेंगे। इस महदनुष्ठान का गुरुत्व उपलब्धि कर प्राण, अर्थ, बुद्धि और वाक्य द्वारा समिति के सेवाकार्य में सहानुभूति प्रदर्शन कर अनुगृहीत करेंगे। इति १३ फरवरी, १९६४

शुद्धभक्त-कृपालेश-प्रार्थी—
"सभ्यवृन्द"
श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

नोट—विशेष विवरण के लिये अथवा साहाय्य (दानादि) देनेके लिये त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति-प्रज्ञान केशव महाराजके निकट उपर्युक्त ठिकाने अथवा श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चौमाथा। चिनसुरा (हुगली) के ठिकाने पर लिखें या भेजें।